* श्रीयन्त्र की साधना *

(आचार्य श्रीललिताप्रसादजी शास्त्री, पीताम्बरापीठ)

भारतवर्ष में तान्त्रिक धारा का प्रवाह अनादिकाल से प्रवाहित होता रहा है। वैदिक वाङ्मय में स्थल-स्थल पर इसके उदाहरण स्पष्ट दिखायी देते हैं। तान्त्रिक विचार-धारा का प्रभाव सभी मतों पर पड़ा है। जैन, बौद्ध, शैव एवं वैष्णव-साधनाओं में भी इसको अङ्गीकृत किया गया है। भारत के बाहर अन्य देशों में भी जहाँ भारतीय साधना का विस्तार हुआ है। इस सम्बन्ध में **'चीनाचार'** का उल्लेख मात्र पर्याप्त होगा। **'योगिनी-तन्त्र'** के अनुसार गुरु और देव-पूजा में शुद्ध बुद्धि रखने वाले सभी वर्णों के लोगों को इस साधना में अधिकार प्राप्त है-

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा अर्चायां शुद्धबुद्धयः ।
गुरुदेवद्विजार्चासु रताः स्युरधिकारिणः ।।

इसी प्रकार श्रीविद्यार्णव-तन्त्र में भी कहा गया है-

त्रिपुराद्याश्च ये मन्त्रा ये मन्त्रा बटुकादयः ।
सर्ववर्णेषु दातव्याः पुरन्ध्रीणां विशेषतः ।।

अर्थात् **'भगवती त्रिपुरा एवं भगवान् बटुकभैरव के मन्त्रों को सभी वर्णों- विशेषतः स्त्रियों को दिये जाने में कोई आपत्ति नहीं है।'** अस्तु! तान्त्रिक-साधना में श्रीयन्त्र की उपासना का विशेष महत्त्व है। वाङ्मय में इस उपासना का विशद विवेचन प्राप्त होता है। दार्शनिक विवेचन भी प्रभूतमात्रा में उपलब्ध होता है। इस साधना में पूरा जीवन समर्पित करना पड़ता है। यह साधना ही मानव-जीवन का परम लक्ष्य है।

ललिता, षोडशी, श्रीविद्या आदि नाम भगवती त्रिपुर-सुन्दरी के ही हैं। श्रीविद्या की व्युत्पत्ति करते हुए व्याडिकोश में कहा गया है-

लक्ष्मीसरस्वतीधात्रीवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु ।
उपकरणवेषरचनाविद्यासु श्रीरिति प्रथिता ।।

अर्थात् लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्माणी- तीनों लोकों की सम्पत्ति एवं शोभा का ही नाम श्री है।

'त्रिपुरा' शब्द का अर्थ बताते हुए **'शक्तिमहिम्नः स्तोत्र'** में कहा गया है- **'तिसृभ्यो मूर्तिभ्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा।'** अर्थात् जो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन तीनों से पुरातन हो वही त्रिपुरा है। **'त्रिपुरार्णव'** ग्रन्थ में कहा गया है-

नाडीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्ना पिङ्गला त्विडा।

मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।

तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात् तु त्रिपुरा मता॥

अर्थात् 'सुषुम्ना, पिङ्गला और इडा- ये तीनों नाडियाँ हैं और मन, बुद्धि एवं चित्त- ये तीन पुर हैं। इनमें रहने के कारण इनका नाम त्रिपुरा है।'

'**ललिता**' नामकी व्युत्पत्ति पद्मपुराण में कही गयी है- 'लोकानतीत्य ललते ललिता तेन चोच्यते।' जो संसार से अधिक शोभाशाली है, वही ललिता है। ललितासहस्रनाम-भाष्य में भी कहा गया है- '**ललितं शृङ्गाररसप्रधानेयं मूर्तिरिति ध्वनितम्।**' इसमें इन्हें शृङ्गार-रसप्रधान बताया गया है।

तन्त्रशास्त्र में भगवती त्रिपुरसुन्दरी का महत्त्व सर्वोपरि बताया गया है। कहा गया है-

न गुरोः सदृशो दाता न देवः शंकरोपमः।

न कौलात् परमो योगी न विद्या त्रिपुरापरा॥

अन्यत्र इनके महत्त्व के सम्बन्ध में कहा गया है कि जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं, किंतु भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना करने वालों के लिये भोग और मोक्ष दोनों ही सहज हैं-

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।

श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

(मङ्गलस्तव)

ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है-

येनान्यदेवतानाम कीर्तितं जन्मकोटिषु।

तस्यैव भवति श्रद्धा श्रीदेवीनामकीर्तने॥

अर्थात् '**जिसने अनेक जन्मों में बहुत साधना की हो उसी को श्रीविद्या की उपासना का सौभाग्य प्राप्त होता है।**'

ललिता की महिमा के सम्बन्ध में परशुरामकल्पसूत्र में कहा गया है-

पञ्चदशीं षोडशीं च तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम्।

चाण्डालेभ्योऽपि गृह्णीयाद् यदि भाग्येन लभ्यते॥

श्रीविद्या की साधना के सम्बन्ध में नित्योत्सव में कहा गया है-

'इत्थं विदित्वा विधिवदनुतिष्ठन् कुलधर्मनिष्ठः सर्वथा कृतकृत्यो भवति। तस्य शरीरत्यागे श्वपचगृहे वा काश्यां वा न विशेषः। स नु जीवन्मुक्तो भवति।' अर्थात् जो श्रीविद्या की साधना को जान लेता है, वह धन्य हो जाता है, उसकी मृत्यु के लिये चाण्डाल-गृह या काशी में कोई अन्तर नहीं रह जाता। वह तो जीवन्मुक्त हो जाता है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चौदह (मतान्तर से १३+१२=पच्चीस) उपासक प्रसिद्ध हैं। जैसे- मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, कामराज, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव, दुर्वासा, दत्तात्रेय तथा दक्षिणामूर्ति। इन उपासकों के भेद से भगवती की साधना एवं मन्त्रों में भी भेद है। उदाहरण के लिये बाला-त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र का जो तृतीय बीज 'सौः' है, वह आनन्दभैरव के मत से **'बिन्दु'** वाला है। दक्षिणामूर्ति के मत से **'विसर्गयुक्त'** है तथा हयग्रीव के मत से **'बिन्दु-विसर्ग'** दोनों से युक्त है।

श्रीचक्रराज के निम्नलिखित नौ चक्र हैं। त्रैलोक्यमोहन, सर्वाशापरिपूरक, सर्वसंक्षोभण, सर्वसौभाग्यदायक, सर्वार्थसाधक, सर्वरक्षाकर, सर्वरोगहर, सर्वसिद्धिप्रद और सर्वानन्दमय। इनकी अधिष्ठात्री नव चक्रेश्वरी हैं। श्रीचक्रराज की आवरण-पूजा से पूर्व लयाङ्ग-पूजा, षडङ्गार्चन, नित्यादेवी पूजन और गुरुमण्डलार्चन होता है। बाद में नवावरणमयी पूजा होती है। नवावरण के पश्चात् पञ्चलक्ष्मी, पञ्चकोशाम्बा, पञ्चकल्पलता, पञ्चकामदुधा और पञ्च रत्नाम्बा का पूजन होता है। बाद में षड्दर्शन-विद्या, षडाधार पूजा एवं आम्नाय-समष्टि-पूजा होती है। श्रीचक्रराज के विषय में तीन मत प्रसिद्ध हैं। हयग्रीव-मत, आनन्दभैरव-मत और दक्षिणामूर्ति-मत। हयग्रीव और आनन्दभैरव-मत में नौ चक्र माने जाते हैं, किंतु दक्षिणामूर्ति-मत में वृत्तत्रय को भी एक चक्र मानते हैं जिसका नाम है **'त्रैवर्गसाधना-चक्र'**।

भगवती के चार आयुध हैं- १-धनुष, २- बाण, ३-पाश और ४- अङ्कुश। मन ही धनुष है, राग पाश है, द्वेष अङ्कुश है तथा पञ्चतन्मात्राएँ पुष्पबाण हैं। पाश को इच्छाशक्ति माना गया है, अङ्कुश ज्ञानरूप है तथा बाण एवं धनुष क्रियाशक्तिमय हैं। वामकेश्वर-तन्त्र में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध भगवती के पाँच बाण माने गये हैं और मन को धनुष बताया गया है। कादि-मत में बाणों के विषय में लिखा है कि भगवती के बाण स्थूल, सूक्ष्म और पर-भेद से तीन प्रकार के हैं। स्थूल बाण फूलों के हैं, सूक्ष्म मन्त्रमय हैं और पर वासनामय हैं। कालिकापुराण में इन्हीं पाँच बाणों को

हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण तथा मारण नाम से कहा गया है। ज्ञानार्णव-तन्त्र में इन्हीं को क्षोभण, द्रावण, आकर्षण, वश्य और उन्माद नाम से कहा गया है।

इन आयुधों के महत्त्व के विषय में शक्तिमहिम्नः स्तोत्र (४५) में कहा गया है कि धनुष का ध्यान करने से संसार के महामोह का नाश होता है। बाणों के ध्यान से सुख की प्राप्ति होती है। पाश के ध्यान से मृत्यु वश में हो जाती है तथा अङ्कुश के ध्यान से मनुष्य माया से पार हो जाता है।

श्रीचक्र के पूजन में दो आचार प्रसिद्ध हैं- समयाचार तथा कौलाचार। इस सम्बन्ध में **'सौन्दर्यलहरी'** (लक्ष्मीधरी टीका) में कहा गया है- 'समयाचार आन्तरिक पूजा है तथा कुलाचार बाह्यपूजा। श्रीचक्र को **'आकाश-चक्र'** भी कहा गया है। आकाश के दो भेद हैं, दहराकाश तथा बाह्याकाश। बाह्याकाश में भूर्जपत्र, चाँदी-सुवर्ण के पात्र आदि में लिखकर श्री चक्र का पूजन होता है। यही कौलपूजा है। दहराकाश में हृद्-व्योम में ही श्रीचक्र का पूजन होता है, यही समयाचार है।' समयाचार में त्रिकोण ऊर्ध्वमुखी होता है। **कौल-चक्र** में त्रिकोण के मध्य बिन्दु होता है। **कौल-चक्र** में नव त्रिकोण होते हैं। इसके बाद दोनों मतों में समानता है अर्थात् नव त्रिकोण के पश्चात् अष्टदल-पद्म, षोडशदल-पद्म तथा तीन में रचनाओं और चतुर्द्वार-युक्त भूपुरत्रय होता है। यही श्रीचक्र का उद्धार है।

समयाचार में सदाख्य-तत्त्व की पूजा सहस्रदल-कमल में ही होती है, बाह्य पीठादि में नहीं। समयमतानुयायी योगीश्वर जीवन्मुक्त होकर आत्मलीन हो जाते हैं। उन्हें बाह्यपूजा की आवश्यकता नहीं होती। समय-मत में मन्त्र का पुरश्चरण, जप एवं होम आदि की आवश्यकता नहीं होती।

श्रीविद्यार्णव के अनुसार श्रीचक्र निर्माण के तीन प्रकार हैं- **१-मेरुपृष्ठ, २-कैलासपृष्ठ तथा ३- भूपृष्ठ।** मेरुपृष्ठ-चक्र में संहार-क्रम में पूजन नहीं होता, सृष्टिक्रम ही पूजन होता है। संहार-पूजन कैलास-पृष्ठ में उत्तम होता है। भूप्रस्तार में स्थिति-पूजन कहा गया है। स्थिति-क्रम गृहस्थ के लिये, संहारक्रम संन्यासियों के लिये तथा सृष्टिक्रम ब्रह्मचारी एवं स्त्रियों के लिये माना गया है। **'रत्न-सागर'** में कहा गया है कि सुवर्ण में जीवनपर्यन्त, चाँदी में बीस वर्ष तथा ताम्र में बारह वर्ष एवं भूर्जपत्र में छः वर्ष तक पूजन का विधान है। **'श्रीविद्यार्णव'** में कहा गया है कि स्फटिक में सदैव पूजन हो सकता है। स्फटिक के श्रीयन्त्र को सर्वोत्तम माना गया है। बिन्दु के अष्टकोणतक तीन चक्रों का नाम **'संहार'** है। दोनों 'दशार' तथा **'चतुर्दशार'**- ये तीनों

चक्र स्थिति-संज्ञात्मक हैं। उसके ऊपर तीन चक्र सृष्ट्यात्मक हैं। रुद्रयामल तथा त्रिपुरोनिषद् में श्रीचक्र का उद्धार इस प्रकार बताया गया है-

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ।।

अर्थात् बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, दशार-युग्म, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय तथा भूपुरत्रय यही परदेवता का स्वरूप है। **'सुभगोदय'** ग्रन्थ में स्थिति-क्रम का उद्धार दिया गया है। **'ज्ञानार्णव'** ग्रन्थ में सृष्टिक्रम का तथा तन्त्रराज में संहार-क्रम का उद्धार दिया गया है।

'नित्योत्सव' में श्रीविद्या के उपासकों के धर्म बताये गये हैं। जैसे- 'किसी भी दर्शन की निन्दा नहीं करनी चाहिये। अपने इष्ट देवता के अतिरिक्त अन्य को श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिये। योग्य शिष्य को ही रहस्य बताना चाहिये। सदैव अपने मन्त्र का चिन्तन करना चाहिये और **'शिवोऽहम्'** की भावना करनी चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य को दूर रखना चाहिये। स्त्रियों से द्वेष नहीं करना चाहिये। सर्वज्ञ गुरु की उपासना करनी चाहिये। गुरु-वचनों एवं शास्त्रों पर संदेह नहीं करना चाहिये। भोगबुद्धि से रहित होकर कर्म करना चाहिये। अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार कर्म करना चाहिये। पञ्चमकार की प्राप्ति न होने पर भी कर्मलोप नहीं करना चाहिये। सदैव निर्भय रहना चाहिये। उन्हें ईख भी नहीं चूसना चाहिये, सिद्ध द्रव्यों की निन्दा नहीं करनी चाहिये, स्त्रियों को ताडित नहीं करना चाहिये। कुलभ्रष्टों की संगति नहीं करनी चाहिये। कुल ग्रन्थों की रक्षा करनी चाहिये आदि।'

इसी ग्रन्थ में पूर्णता-प्राप्त साधकों के भी धर्म बताये गये हैं। उनके लिये सभी विषय हवि हैं। इन्द्रियाँ ही स्रुव हैं। परम शिव की शक्तियाँ ही ज्वाला हैं। स्वात्मशिव अग्नि है एवं स्वयं होता है। निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति ही फल है, अपने पारमार्थिक स्वरूप का लाभ ही लक्ष्य है।

इस साधना में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध सर्वोपरि है। इस सम्बन्ध में **'श्रीविद्यार्णव'** में बताया गया है कि शिष्य को श्रद्धावान्, स्थिर-बुद्धि और जितेन्द्रिय होना चाहिए। उसे गुरुमन्त्र और देवता में ऐक्य-भावना रखनी चाहिये। और गुरु के वचनों का पालन करना चाहिये। गुरु में मनुष्य बुद्धि नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य गुरु को मनुष्य समझता है, मन्त्र को अक्षरभाव समझता है, प्रतिमा को शिला समझता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है। शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा कर लेता है, किंतु

गुरु के रुष्ट होने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता। गुरु के कठोर वचनों को भी आशीर्वाद समझना चाहिये और उनकी ताड़ना को भी प्रसन्नता समझनी चाहिये।

साधकों के कर्तव्यों का विवरण भी **'श्रीविद्यार्णव'** में दिया गया है। जैसे- मन्त्र को गोपनीय रखना चाहिये। मन्त्रों को गुरुमुख से ही प्राप्त करना चाहिये। गुरुमुख से प्राप्त मन्त्र ही सफलता देते हैं कुल-धर्म का पालन करना चाहिये। गुरु-पत्नी, गुरु-पुत्र, वरिष्ठ साधक, कुल-शास्त्र, योगिनी, सिद्धपुरुष कन्या तथा स्त्री का सम्मान करना चाहिये, इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। कुल-वृक्षों के नीचे सोना नहीं चाहिये, कुल-वृक्षों को काटना नहीं चाहिये।

श्रीविद्या का दार्शनिक विवेचन भी प्रभूत मात्रा में उपलब्ध होता है। श्रीविद्या के साधकों को भगवती के दार्शनिक स्वरूप से भी परिचित होना चाहिये। यह विषय दुरूह है। गुरुमुख से एवं अभ्यास के द्वारा इस विषय को समझा जा सकता है। यहाँ लेख के अन्त में महर्षि पुण्यानन्दनाथ द्वारा विरचित **'कामकला-विलास'** ग्रन्थ के आधार पर दार्शनिक स्वरूप का विवरण दे रहे हैं।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का श्रीचक्र के साथ तादात्म्य है। शिव से लेकर पृथ्वीपर्यन्त ३६ तत्त्वमय समस्त संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय पराम्बा भगवती की क्रीडा है। शक्ति 'विमर्श' रूपिणी हैं तथा परम शिव **'प्रकाश'**- स्वरूप हैं। आदिशक्ति परा भट्टारिका भगवती त्रिपुरसुन्दरी नित्यानन्दमय हैं, न तो कोई इनसे अधिक है और न समकक्ष। वे दृश्यमान चराचर विश्व की जन्मदात्री हैं। स्वयं प्रकाश स्वरूप शिव भी इस विमर्शरूपी आदर्श (दर्पण) में अपने-आपके प्रतिबिम्ब को देखकर स्वरूप-ज्ञान प्राप्त करते हैं। उसी पराशक्ति में शिव-शक्ति का ऐक्य है। शिव ज्ञानस्वरूप हैं। शक्ति क्रियास्वरूप है। 'अकार' विमर्श है और 'हकार' प्रकाश है। इन दोनों के मिलने से 'अहं' पद ही इनका वाच्य है। महाबिन्दु में परम शिव शक्ति स्वरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रहा है। श्वेत-बिन्दु शिवात्मक है। रक्त-बिन्दु शक्त्यात्मक है। रक्त और श्वेत बिन्दु के समागम से तीसरे मिश्र 'बिन्दु' का आविर्भाव होता है। यही 'अहं' पद है। रक्त-बिन्दु अग्निकला है, श्वेत-बिन्दु चन्द्र-कला है तथा 'मिश्र-बिन्दु' 'सूर्य-कला' है। ये तीनों बिन्दु त्रिकोणात्मक हैं। इनसे तथा महाबिन्दु से मिलकर कामकला की अभिव्यक्ति होती है। जो कामकला की श्रीचक्र के क्रम से आराधना करते हैं, उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है। रक्त बिन्दु से नाद की उत्पत्ति होती है, उससे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा समस्त वर्णमाला की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार श्वेतबिन्दु

से भी उत्पत्ति होती है। दोनों बिन्दुओं में अभेद है। जिस प्रकार दोनों बिन्दुओं में अभेद है उसी प्रकार **'कादि'** तथा **'हादि'** दोनों विद्याओं में भी अभेद है।

वर्ण, पद एवं मन्त्र- ये शब्दाध्व हैं तथा कला, तत्त्व और भुवन- ये तीन अर्थाध्व हैं। इन्हीं से संसार की सृष्टि होती है। जिस प्रकार शब्द और अर्थ अभिन्न हैं, उसी प्रकार शिव-भक्ति का ऐक्य है। ऐं, क्लीं, सौः- इन तीनों बीजों द्वारा क्रमशः उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है। प्रमाता, मान तथा मेय अर्थात् परमशिव, पञ्चदशी विद्या एवं भगवती त्रिपुरसुन्दरी- ये तीनों समष्टि-रूप से निर्वाणरूपी महाबिन्दु में अवस्थित हैं। इसे ही **'अहं'** कहते हैं। यही परब्रह्म-स्वरूप है।

आकाश का गुण शब्द है। वायु में आकाश और वायु दोनों हैं। तेज में आकाश, वायु और तेज तीनों हैं। जल में जलसहित चार हैं तथा पृथ्वी में पाँचों हैं। ये कुल मिलाकर पंद्रह होते हैं। यही पञ्चशाक्षरी श्रीविद्या है। पञ्चदशी-मन्त्र भगवती का सूक्ष्म-शरीर है। इस महामन्त्र के हादि एवं कादि दो प्रधान भेद हैं। हादि-मत में प्रथम कूट में पाँच स्वर, सात व्यञ्जन हैं। द्वितीय कूट में छः स्वर और आठ व्यञ्जन तथा तृतीय कूट में चार स्वर और तीन व्यञ्जन हैं। यह हादि-विद्या लोपामुद्रा द्वारा उपासित है। कादि-विद्या के प्रथम कूट में सात स्वर एवं पाँच व्यञ्जन हैं। अन्य कूटों में कोई भेद नहीं है। यह विद्या कामराज-उपासित है।

मूलाधार में शक्तिका प्रथमावतार नाद के रूप में परा वाक् है। इस रूप का अनुभव अन्तःकरण में ही होता है। यही परा वाक् नाभिचक्र में **'पश्यन्ती'**, हृदय में **'मध्यमा'** एवं कण्ठ में **'वैखरी'** बनकर 'अ' से 'अः' तक, 'क' से 'त' तक, 'थ' से 'क्ष' पर्यन्त तीन खण्डों में परिणत है। श्रीचक्रराज इनका स्थूलरूप है। जनक योग्यात्मक श्रीचक्र का नवमावरण बिन्दुचक्र के मध्य स्थित है। यही समग्र विश्व के विकास का मूल है। परब्रह्म स्वरूपिणी त्रिपुरा का यही प्रथम सगुण स्थान है। इससे त्रिकोण बनता है। इसके आगे वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका एवं पराशक्ति के पाँच त्रिकोण शक्त्यात्मक हैं। इनकी स्थिति अधोमुख के रूप में है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता- ये चार त्रिकोण शिवात्मक ऊर्ध्वमुख हैं। झल्लक, किंकिणि, घण्टा, शङ्ख, वीणा, वेणु, भेरी, मृदङ्ग और मेघ- ये नव नादमयी सूक्ष्मा हैं। इसी प्रकार अ, लृ, क, च, ट, त, प, य, श- ये नव वर्णमयी स्थूल हैं।

इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से संक्षेप में भगवती त्रिपुर सुन्दरी एवं श्रीचक्रराज का वर्णन किया गया है। यह साधना केवल पुस्तकों से पढ़कर नहीं करनी चाहिये। योग्य गुरु-परम्परा से ही इसे प्राप्त कर साधना प्रारम्भ करनी चाहिये। इसी में साधक का कल्याण निहित है। *(कल्याण शक्ति उपासना अंक से साभार---)*

त्रिपुराम्बा ही आत्मशक्ति

'**हारितायन-संहिता**' में गुरु श्रीदत्तात्रेय ने परशुरामजी से त्रिपुराम्बा के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा है- 'राम! उस पराशक्ति के माहात्म्य का कौन वर्णन कर सकता है? सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, लोकेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी अभी तक उस शक्ति का न स्वरूप जानते हैं, न स्थान ही जानते हैं। वस्तुतः 'वह शक्ति ऐसी है' इस प्रकार कोई भी यथार्थतः वर्णन नहीं कर सकता। वेद, शास्त्र, तन्त्र भी उसके वर्णन में असमर्थ हैं। प्रत्यक्षादि प्रमाण तो प्रमेयमात्र को ही ग्रहण करते हैं, उस शक्ति के स्वरूप तक तो उसकी पहुँच ही नहीं है। जैसे अग्नि की ज्वाला प्रज्वलित अङ्गार-समष्टियों में आविर्भूत होकर जब शान्त होती है तब वह कहाँ गयी अथवा किस में अन्तर्भूत हुई- यह ज्ञात नहीं होता, वैसे ही समस्तमातृ-मण्डलशक्तिसंघट्टरूपिणी महाचैतन्यात्मिका श्री का क्या स्वरूप है, वह कैसे आविर्भूत होती हैं और किसमें अन्तर्भूत होती है, यह ज्ञात नहीं होता। न तो वह तर्क से और न युक्ति से ही ज्ञात होती है। '**अहमस्मि**' (मैं हूँ) इस प्रतीति के सिवा उसकी उपलब्धि का दूसरा कोई प्रमाण नहीं है। 'मैं हूँ' यह प्रतीति होना ही आत्मशक्ति का भान है। अन्तर, बहिः, सर्वदा, सर्वत्र- इस प्रकार आत्मशक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला साधक गङ्गागर्भ में निमग्न गज के समान सर्वशीतलभाव को प्राप्त हो जाता है।

श्रीविद्या ही आत्मशक्ति

वास्तव में 'श्रीविद्या' ही आत्मशक्ति है, आत्मशक्त्युपासना ही श्रीविद्योपासना है। हरितायनसंहिता, त्रिपुरा-रहस्य-माहात्म्यखण्ड के चतुर्थ अध्याय में महामुनि संवर्त ने श्रीपरशुरामजी के संसार-भय से पीड़ितों के लिये शुंभ मार्ग कौन-सा है?' इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा है- 'परशुराम! गुरूपदिष्ट मार्ग से स्वात्मशक्ति महेश्वरी त्रिपुरा की आराधना कर उसकी कृपा के लेश को प्राप्त करते हुए सर्व-साम्याश्रयात्मक स्वात्मभाव को प्राप्त करो। दृश्यमान सब कुछ आभासमात्र सारशक्ति-विलास ही है। यह समझकर जगद्गुरु-समापत्ति को प्राप्त होते हुए निर्भय तथा निःसंशय होकर तुम भी मेरे ही समान यथेच्छ संचार करो। सर्वभावों में स्वात्मा को और स्वात्मा में सर्वभावों को देखते हुए पिण्डाहम्भाव को छोड़कर वेत्तृभाव के आसन पर स्थिर रहो। स्वदेह को वेद्य समझते हुए वेत्तापर सर्वदा दृष्टि रखने वाले को इस संसार-मार्ग में कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता।'

कामेश्वर, कामेश्वरी और उनके उपासक का स्वरूप

स्वात्मशक्ति श्रीविद्या ही ललिता-कामेश्वरी महात्रिपुर-मुन्दरी है। वह महा-कामेश्वर के अङ्क में विराजमान है। उपाधिरहित शुद्ध स्वात्मा ही महाकामेश्वर है। सदानन्दरूप उपाधिपूर्ण स्वात्मा ही पर-देवता महात्रिपुरसुन्दरी कामेश्वरी ललिता है। निष्कर्ष यह है कि 'स्व' अर्थात् उपासक की आत्मा, अन्तर्यामी सदानन्द-उपाधिपूर्ण ही ललिता है। सत्त्व, चित्त्व, आनन्दस्वरूप धर्मत्रयनिर्मुक्त धर्मिमात्र वही स्वात्मा श्रीविद्या ललिता का आधारभूत महाकामेश्वर है। पर-देवता स्वात्मा से अभिन्न होने पर भी अन्तःकरणोपाधिक आत्मा उपासक है और सदानन्दोपाधिपूर्ण आत्मा '**उपास्य**' है, सर्वथा निरुपाधिक आत्मा महाकामेश्वर है।

श्रीविद्या के तीन रूप हैं-१ स्थूल, २ सूक्ष्म और ३ पर। तीनों का तो इस सीमित लेख में आवश्यक विवेचन-सम्भव नहीं है। अतः यहाँ विशेषरूप से इसके स्थूलरूप के निरूपण का प्रयास किया जा रहा है। जहाँ स्थूलरूप श्रीचक्रार्चन और सूक्ष्मरूप श्रीविद्या-मन्त्र है वहीं पर-विद्या देह में श्रीचक्र की भावना की विधि है। आचार्य शङ्कर के मतानुसार चौंसठ तन्त्रों का व्याख्यान करने के अनन्तर पराम्बा के निर्बन्ध से श्रीविद्या का व्याख्यान भगवान् सदाशिव ने किया, अतः यह ६५वाँ तन्त्र है। आचार्यों ने **'वामकेश्वर-तन्त्र'** को- जिसमें **'नित्याषोडशिकार्णव'**, तथा **'योगिनीहृदय'**, दो चतुश्शती हैं- ही श्रीविद्या का पूर्णरूप से विधान करने वाला ६५वाँ (मतान्तर से ७८वाँ) तन्त्र माना है। अतः उसी के अनुसार यहाँ सर्वसुलभ भाव-भाषा में इस विषय पर प्रकाश डाला जा रहा है।

श्रीयन्त्र का स्वरूप

'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'- श्रीयन्त्र शिव-शिवा का विग्रह है। **'एका ज्योतिरभूद् द्विधा'**- सृष्टि के प्रारम्भ में अद्वैततत्त्व प्रकाशस्वरूप एक ज्योति ही दो रूपों में परिणत हुई। यह जगत् **'जनकजननीमज्जगदिदम्'**- माता-पिता शिव-शक्ति के रूप में परिणत हुआ। फिर इस जगत् का स्वेच्छा से निर्माण करने के लिये उस परम शक्तिमें स्फुरण हुआ और सर्वप्रथम श्रीयन्त्र का आविर्भाव हुआ-

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।
स्फुरतामात्मनः पश्येत्तदा चक्रन्य सम्भवः ।। *(नित्याषोड.)*

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म-मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः ।।

'बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार-बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय, भूपुर- इन नवयोन्यात्मक समस्त ब्रह्माण्ड का नियामक रेखात्मक श्रीयन्त्र का प्रादुर्भाव हुआ।

बैन्दवं चक्रमेतस्य त्रिरूपत्वं पुनर्भवेत् ।
धर्माधर्मौ तथात्मानः मातृमेयौ तथा प्रमा ।
नवयोन्यात्मकमिदं चिदानन्दघनं महत् ।। *(नित्याषोड.)*

सर्वप्रथम बिन्दु के तीन रूप हुए-धर्म, अधर्म चार आत्मा-प्रमातृ-प्रमेय और प्रमा त्रिपुटी। धर्म और अधर्म दो, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा चार, प्रमातृ, प्रमेय, प्रमा- ये तीन इस प्रकार नौ हुए। त्रिकोण और अष्टकोण यही नवयोन्यात्मक श्रीचक्र है। शेष सब कोणों और दलों का इसी नवयोनियों में समावेश हो जाता है। ब्रह्माण्ड-पुराण में लिखा है-

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम् ।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्त्रके ।।

-'इस प्रकार नवयोन्यात्मक श्रीचक्र ४२ कोणों और ९ आवरणों वाला बन जाता है।' इसके नौ प्रकार है-

पूज्य देवता	आवरण	नाम	चक्रेश्वरी
१	बिन्दु	सर्वानन्दमय	ललिता महात्रिपुरसुन्दरी
३	त्रिकोण	सर्वसिद्धि	त्रिपुराम्बा
८	अष्टकोण	सर्वरोगहर	त्रिपुरासिद्धा
१०	अन्तर्दशार	सर्वरक्षाकर	त्रिपुरमालिनी
१०	बहिर्दशार	सर्वार्थसाधक	त्रिपुराश्री
१४	चतुर्दशार	सर्वसौभाग्यदायक	त्रिपुरवासिनी
८	अष्टदल	सर्वसंक्षोभण	त्रिपुरसुन्दरी
१६	षोडशदल	सर्वाशापरिपूरक	त्रिपुरेशी
२८	भूपुर	त्रैलोक्य-मोहन	त्रिपुरा

रेखात्मक श्रीयन्त्र

श्रीविद्या-सिद्धि के लिये श्रीयन्त्र की साधना की जाती है। इसमें मुख्यरूप से ९८ शक्तियों का अर्चन होता है। ये शक्तियाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित करती हैं। अतः श्रीयन्त्र और विश्व का तादात्म्य है। श्रीविद्याका साधक इन शक्तियों का अर्चन कर पहले अपने शरीर में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और दसों इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाता है। फिर ब्राह्म-जगत् पर भी नियन्त्रण करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार श्रीयन्त्र और देह की भी एकता है। सिद्धिगत साधक अपने शरीर को ही

श्रीयन्त्ररूप में भावित कर लेता है। इससे शापानुग्रहशक्ति प्राप्त हो जाती है। आगमशास्त्रों में श्रीयन्त्र की विलक्षण महिमा वर्णित है। यह महाचक्र श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरीका साक्षात् विग्रह एवं पराशक्तिका अभिव्यक्ति-स्थान है। इसके पूजन से अनेक चमत्कारिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा समस्त व्याधियाँ एवं दरिद्रता दूर होती है। शान्ति, पुष्टि, धन, आरोग्य, मन्त्रसिद्धि, भोग एवं मोक्ष प्राप्त होता है। सब प्रकार की रक्षा, समस्त आनन्द, सकल कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है। **'नित्याषोडशिकार्णव'** में अनेक अलौकिक विलक्षण चमत्कारों से परिपूर्ण इसके प्रभाव का विस्तृत वर्णन है। विधिवत् प्राणप्रतिष्ठा किये हुए एवं प्रतिदिन पूजित श्रीचक्र के दर्शन का फल महान् है-

सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात् ।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम् ।।

इसी प्रकार श्रीचक्र के पादोदक-पान से भी सहस्रकोटि तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होता है-

तीर्थस्नानसहस्रकोटिफलदं श्रीचक्रपादोदकम् ।

यह महाफल श्रीयन्त्र के नित्य-नैमित्तिक विधिवत् अर्चन से ही सम्भव है।

श्रीयन्त्र का अर्चन

जिसे परम्परा से साधना करने वाले पारम्परीण गुरु के द्वारा श्रीयन्त्र की दीक्षा प्राप्त हो एवं जो श्रीयन्त्रार्चन-पद्धति का यथावत् ज्ञाता हो, वही श्रीयन्त्र के अर्चन का अधिकारी है। इस अर्चना के लिये तन्त्र-शास्त्रों में वाम और दक्षिण- दो मार्ग बतलाये गये हैं। वाममार्ग की उपासना पुराकाल में सम्प्रदाय विशेष में प्रचलित थी, किंतु बौद्धकाल में उसका घोर दुरुपयोग हुआ और वह सम्प्रदाय छिन्न-भिन्न होकर अस्त-प्राय हो गया। तदनन्तर आद्यशङ्कराचार्य ने दक्षिणमार्ग का एक परिष्कृत रूप लोको-पकारार्थ प्रस्तुत किया। आजतक अनवरत रूप से वही परम्परा चली आ रही है।

इस मार्ग का प्रामाणिक ग्रन्थ श्रीगौड़पादाचार्य-विरचित **'सुभगोदय-स्तुति'** है। शङ्करभगवत्पाद-विरचित **'सौन्दर्य-लहरी'** में श्रीविद्यामन्त्र, यन्त्र आदि का साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। इसकी अनेक आचार्यों द्वारा की हुई अनेक टीकाएँ भी उपलब्ध हैं। इसके सौ श्लोक सौ ग्रन्थों के समान हैं। यह भगवती की साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति ही है। इसीके आधार पर विरचित पद्धतियाँ दक्षिण भारत और उत्तर भारत से प्रकाशित हुई हैं।